2 अक्टूबर 2009, कुल पृष्ठ : 8, मूल्य : 2/- आर. एन. आई. 31109/77 RJ / J. P. C / FN-61 / 2009-11

जैन
पथप्रदर्शक

ए-4, बापूनगर, जयपुर - 302015 (राज.)

नैतिक एवं सामाजिक चेतना का अग्रदूत निष्पक्ष पाक्षिक

जिसमें मतभेद की कहीं कोई गुंजाइश नहीं है ह्न ऐसे तत्त्वज्ञान पर विशेष जोर देना चाहिये। उसके प्रचार-प्रसार में अपनी शक्ति लगानी चाहिये।

ह्न बिखरे मोती, पृष्ठ-88

वर्ष : 32, अंक : 13 सम्पादक : **पण्डित रतनचन्द भारिल्ल** आजीवन शुल्क : 251 रुपये

अक्टूबर (प्रथम), 2009 प्रबन्ध सम्पादक : **पण्डित संजीवकुमार गोधा** वार्षिक शुल्क : 25 रुपये

आध्यात्मिक शिक्षण-शिविर का उद्घाटन

जयपुर (राज.) : पण्डित टोडरमल सर्वोदय ट्रस्ट द्वारा ज्ञानतीर्थ श्री टोडरमल स्मारक भवन बापूनगर में आयोजित बारहवें आध्यात्मिक शिक्षण-शिविर का उद्घाटन रविवार, दिनांक 27 सितम्बर को श्री अभयकरणजी सेठिया, सरदारशहर के करकमलों से हुआ।

इस अवसर पर आयोजित सभा की अध्यक्षता श्री सुमनभाई दोशी राजकोट ने की। मुख्य-अतिथि के रूप में श्री महावीरप्रसादजी सरावगी कोलकाता एवं विशिष्ट-अतिथि के रूप में श्री मुकेशजी जैन इंदौर, श्री महेन्द्रकुमारजी पाटनी जयपुर, श्री राजकुमारजी सेठी जयपुर, श्री प्रदीपकुमारजी चौधरी किशनगढ, श्री शांतिलालजी चौधरी भीलवाड़ा, श्री राहुल-परितोषवर्धनजी जयपुर मंचासीन थे।

डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल आदि अनेक विशिष्ट विद्वान एवं विशिष्ट अतिथियों के साथ ट्रस्ट के अध्यक्ष श्री सुशीलजी गोदीका भी मंचासीन थे।

इस अवसर पर पण्डित पूनमचन्दजी छाबड़ा, इंदौर ने पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट की बहुमुखी गतिविधियों का संक्षिप्त परिचय दिया। अन्य विशिष्ट अतिथियों के उद्बोधन के उपरान्त डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल ने अपने मार्मिक उद्बोधन में वर्तमान समय में आध्यात्मिक शिविरों की उपयोगिता एवं आवश्यकता पर प्रकाश डालते हुये पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट की स्थापना से लेकर आजतक चल रही गतिविधियों का उद्देश्य एकमात्र तत्त्वप्रचार ही बताया तथा संस्था की रीति-नीति से जनसामान्य को अवगत कराया।

इस अवसर पर विद्वत्प्रतिनिधि के रूप में बोलते हुये पण्डित अभयकुमारजी शास्त्री देवलाली ने कहा कि तत्त्वप्रचार की गतिविधियों में डॉ. साहब का वही स्थान है, जो आत्मा में ज्ञान का होता है तथा यह भी कहा कि यदि तत्त्वप्रचार में जीवन बिताना हो तो अध्यात्म का ठोस अध्ययन होना चाहिये, थोड़ा बहुत न्याय-व्याकरण का भी अध्ययन होना चाहिये।

संचालन श्री शुद्धात्मप्रकाशजी भारिल्ल ने तथा मंगलाचरण विवेक शास्त्री दलपतपुर ने किया।

उद्घाटन सभा के पूर्व ध्वजारोहण श्री निहालचंदजी घेवरचंदजी जैन, जयपुर के कर कमलों से हुआ। उन्होंने अपने उद्बोधन में टोडरमल स्मारक से होनेवाले तत्त्वप्रचार की बहुत सराहना की।

अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन के तत्त्वावधान में ह्न

दक्षिणभारत के तीर्थों की यात्रा का आयोजन

अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन के तत्त्वावधान में **दिनांक 22 दिसम्बर से 28 दिसम्बर, 2009** तक श्रवणबेलगोला आदि तीर्थक्षेत्रों की यात्रा का आयोजन राष्ट्रीयस्तर पर किया जा रहा है। यात्रा दिनांक 22 दिसम्बर को धर्मस्थल से प्रारंभ होकर बैंगलोर में समाप्त होगी।

इस दौरान धर्मस्थल, बेणूर, कारकल, मूडबिद्री, हलीबिड, श्रवणबेलगोला, कम्बदहल्ली, जिननाथपुर, कनकगिरि, गोम्मटगिरि, मैसूर आदि क्षेत्रों की यात्रा का लाभ मिलेगा। यात्रा के संघपति श्रीमती सूरजदेवी जमनालालजी सेठी परिवार, लाल कोठी, जयपुर हैं। इस यात्रा में अन्तरराष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त विद्वान डॉ.हुकमचन्द भारिल्ल, पण्डित रतनचन्दजी भारिल्ल आदि अनेक विद्वानों का लाभ मिलेगा।

बुकिंग पहले आऐं, पहले पायें के आधार पर होगी। फार्म जमा कराने की अन्तिम तिथि 31 अक्टूबर, 09 है। यात्रा हेतु कुल राशि 5100/-रुपये प्रति व्यक्ति रखी गई है, जिसे फार्म के साथ अग्रिम कैश या ड्राफ्ट के रूप में **अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन जयपुर** के नाम पर भेजने पर ही बुकिंग सुनिश्चित होगी। महाविद्यालय के पूर्व छात्रों (पत्नी सहित)को 1000/- की छूट संघपति परिवार द्वारा दी जा रही है।

छह वर्ष तक के बच्चों की यात्रा नि:शुल्क रहेगी; परन्तु उसे अलग से सीट देना संभव नहीं होगा। 70 वर्ष से अधिक आयु के व्यक्तियों को यात्रा में ले जाना संभव नहीं है।

यदि किसी कारणवश आप अपनी बुकिंग 15 दिसम्बर तक कैन्सिल कराते हैं तो 1000/- रुपये काटकर राशि वापिस की जायेगी। इसके उपरान्त बुकिंग कैन्सिल कराने पर कोई राशि वापिस नहीं की जा सकेगी। यदि किसी कारणवश यात्रा कमेटी आपको ले जाने में असमर्थ है तो सम्पूर्ण राशि वापिस कर दी जायेगी। इसकी जानकारी आपको 7 नवम्बर तक दे दी जायेगी।

आवेदक के लिये तीर्थ यात्रा कमेटी द्वारा निर्धारित नियम-शर्तें मान्य होंगी, अन्तिम निर्णय यात्रा कमेटी का होगा।

यात्रा की विशेष जानकारी हेतु जयपुर कार्यालय से संपर्क करें।

सम्पादकीय –

चलते–फिरते सिद्धों से गुरु (37)

(गतांक से आगे ...) ह्न पण्डित रतनचन्द भारिल्ल

आचार्यश्री ने चातुर्मास के अन्तिम प्रवचन में कहा ह्न ''जिसका संयोग हुआ है, उसका वियोग सुनिश्चित है; क्योंकि संयोग का वियोग के साथ अविनाभावी सम्बन्ध है। दोनों एक सिक्के के दो पहलू हैं।

जो व्यक्ति जितने जल्दी इस परम सत्य को समझ लेगा, स्वीकार कर लेगा वह उतने जल्दी संभल जायेगा। फिर वह संयोगों में उलझकर संयोगीभाव (राग–द्वेष) नहीं करेगा। अपनी प्राप्त पर्याय की सुविधाओं का आत्महित में सदुपयोग कर लेगा। अन्यथा शेष जीवन भी यों ही कमाने–खाने और मौज–मस्ती में, ऐसो–आराम में बिना भावी जन्म की योजना बनाये व्यतीत हो जायेगा। फिर यह जीव संसार सागर की चौरासी लाख योनियों में अनन्तकाल तक गोते खाता रहेगा।''

आचार्यश्री के वैराग्य प्रेरक संक्षिप्त उपदेश से प्रभावित होकर समाज प्रमुख ने सभी को संबोधित करते हुए कहा ह्न ''हमें पता नहीं कि हमारे जीवन रूपी खिलौने में और कितनी चाबी शेष है, यह खिलौना चलते–चलते कब बंद हो जायेगा? इस पर गंभीरता से विचार कर शेष जीवन को सार्थक करने की कोशिश नहीं करते।''

अब हमें अपने जीवन को पानी के बुलबुले की भाँति क्षण भंगुर मानकर एक क्षण खोए बिना अगले जन्म के बारे में भी सोचना होगा।

देखो, अनुकूल संयोगों में हम जितने हर्षित होते हैं, उन संयोगों के वियोग में उतना ही दुःख होता है। चार माह पूर्व जब मुनिसंघ का आगमन हुआ था, तब आप लोग हर्ष से फूले नहीं समाये। वे चार माह कब/कैसे बीत गये? कुछ पता ही नहीं चला। इस मंगलमय सु–अवसर का हम लोगों को जितना लाभ लेना चाहिए था, नहीं ले पाये। इसमें मुनि संघ की ओर से कोई कमी नहीं रही। मुनिसंघ ने धर्ममय वातावरण बनाकर तत्त्वज्ञान का उपदेश देने में कोई कसर नहीं छोड़ी; परन्तु हम ही प्रवचनों के समय भी अन्य व्यर्थ के कामों में उलझे रहें, जो सर्वथा अनुचित था। ऐसे पुण्य अवसर बार–बार नहीं मिलते। अस्तुः'' इसप्रकार समाज प्रमुख के उद्‌बोधन के उपरान्त आचार्यश्री ने प्रवचनों की शृंखला में आज मुनियों के भेद–प्रभेदों की चर्चा प्रारंभ की।

आचार्यश्री ने कहा ह्न ''देखो, उपयोग की अपेक्षा मुनिराज के दो भेद हैं ह्न १. शुद्धोपयोगी मुनि और २. शुभोपयोगी मुनि। शुद्धोपयोगी मुनि निरास्रव हैं और शुभोपयोगी सास्रव है।

वस्तुतः शुद्धोपयोगी मुनि तो वे ही हैं जो समस्त परद्रव्य से निवृत्ति करके, सुविशुद्ध–दर्शन–ज्ञान स्वभाववाले आत्मतत्त्व में आरूढ हैं तथा दूसरे शुभोपयोगी मुनि वे हैं जो श्रामण्य परिणति की प्रतिज्ञा करके भी अभी कषाय अंश के जीवित होने से समस्त परद्रव्यों की निवृत्ति करके सुविशुद्ध दर्शन–ज्ञान स्वभाववाले आत्मतत्त्व में आरोहण करने में असमर्थ हैं; अतः प्रमत्त गुणस्थान में ही रह रहे हैं। संज्वलन चौकड़ी कषाय के तीव्र उदय के कारण उनकी शक्ति अभी कुण्ठित है।

वे शुद्धोपयोग भूमिका में जाने के लिए अत्यन्त उत्कण्ठित रहते हैं, इसकारण उन्हें भी उपचार से शुद्धोपयोगी कह सकते हैं।

शुभोपयोगी मुनि का लक्षण बताते हुए प्रवचनसार गाथा २४६ में लिखा है ह्न 'जिस श्रामण्य में अरहन्तादिक के प्रति भक्ति तथा प्रवचन करते हुए जिज्ञासु जीवों के प्रति वात्सल्य पाया जाता है, उसकी मुनिचर्या शुभोपयोगी चारित्ररूप है। श्रमणों के प्रति वन्दन–नमस्कार सहित अभ्युत्थान और अनुगमनरूप प्रवृत्ति करने तथा उनका श्रम दूर करने आदि की रागचर्या शुभोपयोगी मुनि को निन्दित नहीं है।'

वास्तव में ये भेद उपयोग की अपेक्षा हैं, व्यक्ति की अपेक्षा नहीं। वे ही मुनिराज जिस समय शुद्धोपयोग से युक्त हैं, उस समय उन्हें शुद्धोपयोगी संज्ञा है और जिस समय वे ही मुनि शुभोपयोग से युक्त हैं, उस समय उन्हें ही शुभोपयोगी संज्ञा है।

प्रवचनसार गाथा २४५ की टीका में उल्लिखित शुभोपयोग के साथ धर्म का 'एकार्थसमवाय' शब्द भी ध्यान देने योग्य है। तात्पर्य यह है कि वे श्रमण अंतरंग में तो मुनिपद के योग्य शुद्धोपयोग और शुद्धपरिणति से प्रवर्तमान हैं, तथापि सम्पूर्णरूप से आत्मस्वरूप में स्थिरता के अभाव में वे ही श्रमण शुभोपयोगी कहलाते हैं।

'जो श्रमण शुभोपयोगी हैं, वे सदा शुभोपयोगी ही रहें, ऐसा नहीं है, कभी–कभी शुद्धोपयोगी भी होते हैं; किन्तु शुभोपयोग की प्रधानता की दृष्टि से वे शुभोपयोगी कहलाते हैं।

छठवें–सातवें गुणस्थानवर्ती एक ही मुनिराज के कभी शुद्धोपयोग होता है तथा कभी शुभोपयोग होता है। शुद्धोपयोगी और शुभोपयोगी ह्न ये भेद धर्म से परिणमित मुनिराजों के हैं?

जो नग्न दिगम्बर हैं, अट्ठाईस मूलगुणों का पालन करते हैं, प्रत्येक अन्तर्मुहूर्त में शुद्धोपयोग में जाते हैं ह्न ऐसे मुनिराज जब सातवें गुणस्थान में शुद्धोपयोग में जाते हैं, तब शुद्धोपयोगी हैं तथा जब छठवें गुणस्थान में आते हैं, तब शुभोपयोगी हैं।

यह बात बहुत स्पष्ट है कि चाहे वे शुद्धोपयोग में हो या शुभोपयोग में तीन कषाय चौकड़ी के अभावरूप निर्मल परिणति सदा विद्यमान होने से वे धर्मात्मा ही हैं, परमपूज्य ही है।''

आचार्यश्री ने आगे कहा ह्न ''मुनियों के पुलाक, बकुश, कुशील, निर्ग्रन्थ और स्नातक ह्न ऐसे पाँच भेद भी तत्त्वार्थसूत्र में कहे हैं।

१. पुलाक मुनि वे हैं जो उत्तरगुणों की भावना से तो रहित ही होते हैं, मूलगुणों के व्रतों में भी किसी काल व किसी क्षेत्र में परिपूर्णता को प्राप्त नहीं करते हैं। पुलाक का अर्थ है धान अर्थात् छिलकासहित चावल। यहाँ अशुद्धता के मिलाप के कारण साधु को पुलाक कहा है।

२. बकुश मुनि निर्ग्रन्थ होते हैं, मूलगुणों का अखण्ड पालन करते हैं, किन्तु शरीर–पीछी–कमण्डलु–पुस्तकादि को संवारने–सजाने में जिनका परिणाम रहता है, धर्म तथा अपने यश–प्रभाव को चाहता है, उसे सांसारिक प्रयोजन के लिए नहीं; अपितु संघ और धर्म की प्रभावना के लिए ऋद्धि की इच्छा होती है, अपनी साता बनी रहने को भला जानते है, किन्तु परमार्थ से तो यह भी परिग्रह ही है। संघ और उपकरण का हर्ष होना छेद है, उस छेद से मिश्रित आचरणसहित होने से बकुश (चितकबरे) कहे गये हैं।

बकुश साधु दो प्रकार के होते हैं ह्न उपकरण बकुश और शरीर बकुश। जो सुन्दर सजे हुए पीछी–कमंडलु उपकरणों की आकांक्षा करते हैं, वे उपकरण बकुश साधु हैं तथा जो शरीर का संस्कार करते हैं, वे शरीर बकुश हैं।

३. कुशील मुनि के दो भेद हैं ह्न एक – प्रतिसेवना कुशील और दूसरा – कषाय कुशील। प्रतिसेवना मुनि वे हैं ह्न जिनके उपकरण तथा शरीरादि से भिन्नता या विरक्तता नहीं हुई है; किन्तु मूलगुणों–उत्तरगुणों की परिपूर्णता है, परन्तु कभी–कभी किसी तरह से उत्तरगुणों में विराधना भी हो जाती है।

कषाय कुशील वे हैं ह्न जिन्होंने अन्य कषायों के उदय को तो वश में किया है, किन्तु जो संज्वलन कषाय के उदय के आधीन हैं।

४. निर्ग्रन्थ मुनि अनन्तानुबंधी, अप्रत्याख्यानवरण और प्रत्याख्याना–वरण कषायरूप मोहकर्म के उदय का तो अभाव हुआ है; किन्तु संज्वलन कषाय का मंद उदय है, जैसे जल में लाठी डालने से रेखा–लहर आती है, किन्तु शीघ्र ही विलीन हो जाती है, उसीप्रकार प्रदेशों का तथा उपयोग का मन्द–मन्द चलना होता है; किन्तु प्रगट अनुभव में नहीं आता है। इनका ११वाँ और १२वाँ गुणस्थान होता है।

ग्यारहवें गुणस्थान से च्युत होने के दो ही कारण हैं ह्न १. कालक्षय २. आयुक्षय। इस गुणस्थान में तो चारित्रमोहनीय कर्म का उपशम हुआ है, अत: ऊपर चढ़ ही नहीं सकता है, गिरता ही है। यदि वह १० वें गुणस्थान में आकर मरण करे तो अहमिन्द्रों में जाकर उत्पन्न होता है।

बारहवें गुणस्थान में क्षपकश्रेणीवाला तो अंतर्मुहूर्त के बाद केवलज्ञान–केवलदर्शन उत्पन्न कर केवली हो जाता है, वह निर्ग्रन्थ मुनि है।

५. स्नातक मुनि वे हैं जो सम्पूर्ण घातिकर्मों का नाश करके केवली जिन हुए, उन्हें स्नातक मुनि कहते हैं।

उक्त पाँचों ही प्रकार के मुनि यद्यपि वस्त्र, आभरण, आयुध, गृह, कुटुम्ब, धान्यादि का अभाव होने से पूर्ण निर्ग्रन्थ ही हैं; तथापि मोहनीयकर्म का सद्भाव होने से पुलाक, बकुश, कुशील साधुओं को अन्तर से पूर्ण निर्ग्रन्थपना नहीं है। लेकिन व्यवहारनय से सभी को निर्ग्रन्थ ही कहते हैं। परमार्थ से तो समस्त मोहनीयकर्म का अभाव होने पर क्षीणकषायी बारहवें गुणस्थानवर्ती के ही निर्ग्रन्थपना होता है।

राजवार्तिक में इस संबंध में शंका करते हुए कहा है कि ह्न 'जैसे चारित्रगत भेदों के कारण गृहस्थ को निर्ग्रन्थ संज्ञा नहीं मिलती है; उसीप्रकार पुलाकादि मुनियों में भी उत्कृष्ट–मध्यम आदि चारित्र के भेद से निर्ग्रन्थपना नहीं बनता है, फिर उन्हें निर्ग्रन्थ कैसे कहते हैं?'

समाधान यह किया है कि जैसे ब्राह्मण जाति में भी आचार–अध्ययनादि के भेद से भिन्नता है तो भी ब्राह्मणपने की अपेक्षा से सभी ब्राह्मण हैं, उसीप्रकार यहाँ भी जानना। **(क्रमश:)**

जैन ति

थ दर्पण

मोक्षमार्ग प्रकाशक का सार 37

नौवाँ प्रवचन

– डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

(गतांक से आगे...)

मोक्षमार्गप्रकाशक का **छठवाँ अधिकार** चल रहा है; जिसमें कुदेव, कुगुरु और कुधर्म के संदर्भ में विशेष निरूपण है। उक्त संदर्भ में व्यन्तरादि देवों की चर्चा चल रही है। उनकी प्रवृत्ति का उल्लेख करते हुए पण्डितजी कहते हैं कि कल्पित देवों के जो चमत्कारादि देखे जाते हैं; वे सभी व्यन्तरादि देवों द्वारा ही किये जाते हैं। पूर्व पर्याय में कोई व्यक्ति उनका सेवक था। वह मरकर व्यंतर हो गया, तब वह उनको मानने की प्रवृत्ति चलाने के लिए कुछ चमत्कार दिखाता है तो यह भोला जगत प्रभावित हो जाता है।

जिनप्रतिमादि के भी जो अतिशय देखने-सुनने में आते हैं; वे सभी भी जिनकृत नहीं हैं; उनमें श्रद्धा रखनेवाले व्यन्तरों के ही कार्य हैं।

व्यन्तरों की वृत्ति और प्रवृत्ति बालकों के समान कुतूहलप्रिय होती है। जिसप्रकार बालक कुतूहलवश कभी अपने को हीन दिखाता है, कभी महान दिखाता है, कभी चिढाता है, कभी गाली सुनाता है, कभी ऊँचे स्वर से रोता है और रोते-रोते हँसने लग जाता है; उसीप्रकार की अनर्गल चेष्टायें व्यंतर भी करते हैं।

ये व्यन्तर अन्य जीवों के शरीरादि को उनके पुण्य-पापानुसार परिणमा सकते हैं। वस्तुत: उनके परिणमन में ये तो मात्र बाह्य निमित्त हैं, अंतरंग निमित्त तो उनके स्वयं के पुण्य-पाप का उदय है। कार्य तो उपादानगत योग्यता के अनुसार ही होता है।

यह सुनकर कोई कह सकता है कि यदि यह बात है तो उनके पूजने में क्या दोष है ?

उससे कहते हैं कि निमित्त तो अपनी बीमारी को दूर करने में वैद्य-डॉक्टर भी हैं, लौकिक अनुकूलता जुटाने में माँ-बाप भी होते हैं, शिक्षा ग्रहण करने में शिक्षक भी होते हैं और सेवा करने में नौकर-चाकर भी होते हैं; इसकारण हम उनका उचित आदर-सत्कार भी करते हैं; पर उन्हें सच्चा देव मानकर उनकी सच्चे देव के समान ही अष्ट द्रव्य से पूजा-अर्चना तो नहीं करने लगते। इसीप्रकार व्यन्तरों की भी पूजा-अर्चना करना ठीक नहीं है। वे तो हमारे और आपके समान ही रागी-द्वेषी देवगति के देव हैं।

इसप्रकार हम देखते हैं कि मोक्षमार्गप्रकाशक के छठवें अधिकार में व्यन्तरदेवों के संदर्भ में विस्तार से चर्चा की गई है। जिन्हें उक्त संदर्भ में विशेष जानने का विकल्प हो; उन्हें मोक्षमार्गप्रकाशक के उक्त प्रकरण का गहराई से अध्ययन करना चाहिए।

इसप्रकार अबतक व्यंतरदेवों के बारे में विचार किया, अब क्षेत्रपाल-पद्मावती आदि के संदर्भ में बात करते हैं; क्योंकि दिगम्बर जैन समाज में इनके संदर्भ में भी बहुत भ्रान्ति है।

उक्त संदर्भ में पण्डितजी लिखते हैं कि यदि कोई प्रश्न करे कि क्षेत्रपाल, पद्मावती और यक्ष-यक्षिणी तो जैनधर्म के अनुयायी हैं; उनकी पूजनादि करने में तो कोई दोष नहीं है न ?

उक्त प्रश्न का उत्तर देते हुए पण्डितजी कहते हैं कि जिनमत में तो संयम धारण करने से पूज्यपना होता है और देवगति के देवों में संयम नहीं होता। तथा जो लोग इनको सम्यक्त्वी मानकर पूजते हैं; उनसे कहते हैं कि भवनवासी, व्यंतर और ज्योतिषयों में सम्यक्त्व की मुख्यता नहीं है।

यदि सम्यक्त्व से ही पूजना है तो लौकान्तिक देवों अथवा सर्वार्थसिद्धि के देवों को क्यों नहीं पूजते ?

इस पर यदि कोई कहे कि इनके भक्ति विशेष है तो कहते हैं कि भक्ति की विशेषता तो सौधर्म इन्द्र में इनसे भी अधिक है और वे नियम से सम्यग्दृष्टि भी हैं; उन्हें छोड़कर इन्हें क्यों पूजते हो ?

इस पर भी यदि कोई यह कहे कि जिसप्रकार राजा के प्रतिहारादिक (द्वारपालादि) हैं तथा प्रतिहारादिक के मिलाने पर राजा से मिलना होता है; उसीप्रकार ये क्षेत्रपालादि तीर्थंकर के प्रतिहारादिक हैं और इनके सहयोग से उनसे मिलना सहज हो जावेगा। अत: इनके पूजने में लाभ ही है।

उक्त प्रश्न का उत्तर देते हुए पण्डितजी कहते हैं कि तीर्थंकरों के समवशरण में क्षेत्रपालादिक का कोई स्थान नहीं है, अधिकार नहीं है। तीर्थंकरों के दर्शन करने के लिए इनके सहयोग की रंचमात्र भी आवश्यकता नहीं है। तीर्थंकर भगवान का समवशरण तो खुला दरबार है। जिनको श्रद्धा है, उनके प्रति भक्ति का भाव है, दिव्यध्वनि सुनने का उत्कृष्टतम भाव है; वे सभी सहजभाव से दौड़े-दौड़े चले जाते हैं; बिना किसी रोक-टोक के दर्शन करते हैं, भक्ति

करते हैं और दिव्यध्वनि का श्रवण कर आनन्दित होते हैं।

इसलिए क्षेत्रपालादि की पूजन देवपूजन तो है ही नहीं; अपितु गृहीत मिथ्यात्व है, मनुष्य भव की नई कमाई है; जो इसके अनंत संसार का कारण बनेगी।

पद्मावती के संदर्भ में जो प्रसंग बना था; वह इसप्रकार है ह्न

अग्नि में जलते हुए नाग-नागिनी की रक्षा तीर्थंकर पार्श्वकुमार ने गृहस्थावस्था में की थी; उन्हें संबोधित भी किया था। फलस्वरूप वे धरणेन्द्र और पद्मावती के रूप में भवनवासी देव-देवी हो गये।

जब मुनि अवस्था में तीर्थंकर पार्श्व मुनिराज पर पूर्व भव के बैरी कमठ के जीव ने उपसर्ग किया; उन पर पत्थर बरसाये और भी अनेकप्रकार के उपद्रव किये; तब उन धरणेन्द्र-पद्मावती नामक देव-देवी को उक्त उपसर्ग को दूर करने का तीव्रतम विकल्प आया और उन्होंने जो कुछ संभव था; वह करने का भरपूर प्रयास किया।

उपसर्ग और रक्षा के प्रयास के बीच में आत्मनिमग्न पार्श्व मुनिराज को केवलज्ञान प्राप्त हो गया; वे अरहंत बन गये और उपसर्ग समाप्त हो गया; क्योंकि अरहंत अवस्था में उपसर्ग नहीं होता।

बात, बस इतनी ही है; पर उसने आज ऐसा रूप धारण कर लिया है कि स्थान-स्थान पर पद्मावती की मूर्तियाँ विराजमान होकर अष्ट द्रव्य से पूजी जाने लगी हैं।

हम यह नहीं कहना चाहते हैं कि हम उनका निरादर करें; क्योंकि निरादर तो किसी का भी नहीं करना चाहिए, शत्रु का भी नहीं; फिर वे तो भगवान पार्श्वनाथ के भक्त होने से हमारे साधर्मी भाई-बहिन हैं। अत: उनके साथ उनकी भूमिकानुसार साधर्मी वात्सल्य तो होना ही चाहिए।

दिगम्बर जैन समाज में एक बहुत बड़ा वर्ग ऐसा है; जो उनकी पूजा-भक्ति करता है। अत: उनके साथ किया गया असद्व्यवहार विग्रह का कारण बन सकता है; जो सामाजिक शान्ति की दृष्टि से भी ठीक नहीं है।

अच्छा तो यही है कि जहाँ जो परम्परा चल रही है, उसमें कोई छेड़छाड़ न की जावे।

यद्यपि यह सबकुछ ठीक है, पर प्रत्येक व्यक्ति का वस्तु के सत्य-स्वरूप का निर्णय करना न केवल जन्मसिद्ध अधिकार है; अपितु आत्म कल्याण और परमसत्य की प्राप्ति के लिए अत्यन्त आवश्यक भी है।

यदि कोई हमारे किसी पूज्य पुरुष की, माता-पिता की, भाई-बहिन की किसी आततायी से रक्षा करने का प्रयास करता है तो हम उसके साथ बहुत अच्छा व्यवहार करते हैं और करना भी चाहिए; परन्तु पंचपरमेष्ठियों के समान उसकी पूजा तो नहीं करने लगते। ठीक इसीप्रकार **धरणेन्द्र-पद्मावती के साथ वात्सल्यभाव का व्यवहार तो उचित माना जा सकता है; किन्तु उनकी पूजा-अर्चना को तो किसी भी रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता है; क्योंकि अष्टद्रव्य से तो एकमात्र सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के धारी सकल संयमी पंचपरमेष्ठी ही पूज्य हैं।**

उपसर्ग दूर करने में तो धरणेन्द्र-पद्मावती ह्न दोनों ही साथ थे। ऐसे कार्यों में तो पति की ही प्रधानता रहती है, पत्नी तो उसका साथ देती है। इस परम्परा के अनुसार इस उपसर्ग के दूर करने के प्रयास में भी धरणेन्द्र को ही मुख्य होना चाहिए; किन्तु मूर्तियाँ धरणेन्द्र की नहीं, पद्मावती की ही देखने में आती हैं; पूजा पाठ भी उनका ही विशेष होता है। एकाध स्थान पर धरणेन्द्र की मूर्ति हो सकती है; पर पद्मावती तो....।

उक्त मनोवृत्ति का कारण कुछ समझ में नहीं आता। सभी तीर्थंकर पुरुष होने से पुरुषों की मूर्तियाँ तो सर्वत्र हैं ही; पर महिलाओं की मूर्तियाँ देखने में नहीं आतीं। हो सकता है कि महिलाओं को प्रतिनिधित्व देने की भावना से यह सबकुछ हुआ हो; पर सोचने की बात यह है कि देवगति की महिला को क्यों चुना गया, वह भी भवनवासी ?

यह तो आप जानते ही हैं कि सम्यग्दृष्टि जीव मर कर न तो महिला की पर्याय में जाते हैं और न भवनवासी, व्यंतर और ज्योतिषी देवों में पैदा होते हैं। ऐसी स्थिति में उनका जन्म से सम्यग्दृष्टि होना संभव नहीं है।

हो सकता है, उन्हें जन्म के बाद सम्यग्दर्शन हो गया हो; पर संयम होने का तो प्रश्न ही खड़ा नहीं होता; क्योंकि देवगति में तो संयम होता ही नहीं है। यदि सम्यग्दर्शन से ही पूजना है तो फिर जिनके सम्यग्दर्शन की गारंटी है, जो एक भवावतारी हैं; ऐसे लाखों अहमिन्द्र, इन्द्र और लौकान्तिक आदि देव हैं; उन्हें छोड़कर एक भवनवासी देवी को पूजना सहजभाव से गले नहीं उतरता। **(क्रमश:)**

2 अक्टूबर 2009, मूल्य : 2/- आर. एन. आई. 31109/77 RJ / J. P. C / FN-61 / 2009-11

हीरक जयन्ती के अवसर पर ह्न

डॉ. भारिल्ल : मनीषियों की दृष्टि में

वर्तमान तत्त्व की प्रभावना में उसका (डॉ. भारिल्ल का) बड़ा हाथ है, स्वभाव का भी सरल है।...तत्त्व की बारीक से बारीक बात पकड़ लेता है, पण्डित हुकमचंद बहुत ही अच्छा है। **– गुरुदेवश्री कानजीस्वामी**

धर्मानुरागी डॉ.भारिल्ल ने समयपाहुड का जैसा गम्भीर चिंतन मनन किया है, उसे देखकर यदि उनका नाम समयसार भारिल्ल होता तो अधिक उपयुक्त होता। **– आचार्य विद्यानंदजी**

मेरा आत्मा, मेरा रोम-रोम आपके (डॉ.भारिल्ल के) साहित्य को पढकर गद्गद् हो उठता है। **ह्न आचार्य धर्मभूषणजी महाराज**

क्रमबद्धपर्याय पुस्तक वर्तमान में सारस्वत विद्वत् लोक में प्रज्वलित प्रकाशमान ध्रुवतारा है। **ह्न स्वस्तिश्री भुवनकीर्ति भट्टारकस्वामीजी**

आपके द्वारा लिखा गया साहित्य युगों-युगों तक जैन शासन को टिकाये रखने में स्तंभ का कार्य करेगा। इतिहास इसकी साक्षी देगा।

ह्न पण्डित नेमीचन्द पाटनी, आगरा

डॉ. साहब की लेखनी पर सरस्वती का वरदान है।

ह्न पण्डित जगनमोहनलाल शास्त्री, कटनी

भारिल्लजी आगम के आलोक में निर्विवाद रूप से युगों युगों तक श्रद्धा-विनय के साथ स्मृत किये जाते रहेंगे।

– प्रतिष्ठाचार्य विमलकुमार जैन – सम्पादक (वीतराग-वाणी)

डॉ. भारिल्ल ऐसे विशिष्ट व्यक्ति हैं, जो सिर्फ अपने मिशन में व्यस्त हैं और यश उनके पीछे भागता है। **ह्न डॉ. राजीव प्रचंडिया**

विषय की गंभीरता को बगैर कोई क्षति पहुँचाये, ज्ञान की गहराईयों में तत्क्षण डुबो देने की कला में माहिर, संपूर्ण भारत के इस श्रेष्ठ वक्ता की वक्तृत्व कला का घोर विरोधी भी नमन करते है।

– अशोक बड़जात्या, इन्दौर

डॉ. भारिल्ल के समन्वय के पाँच सूत्र

1. भूतकाल को भूल जाओ, इसकी चर्चा मत करो।
2. भविष्य के लिये शर्त मत रखो।
3. वर्तमान में जो जहाँ है, वहीं रहकर अपना-अपना कार्य करे।
4. जिन पाँच प्रतिशत विषयों में असहमति है, उन्हें अचर्चित रहने दें, उनके संबंध में मौन रहें।
5. जिन बातों में पूर्ण सहमति है, उनका मिलजुलकर या अलग-अलग रहकर जैसे भी संभव हो प्रचार-प्रसार करें।

आगामी कार्यक्रम...

जीवन में धर्म के संस्कारों के संवर्धन द्वारा जीवन जीने की कला सिखाने के उद्देश्य से दिव्यध्वनि प्रचार-प्रसार (सर्वोदय) ट्रस्ट द्वारा आर्ट ऑफ हैप्पी लिविंग तृतीय सेमिनार का आयोजन किया जा रहा है।

सेमिनार में युवक-युवतियों को धर्म की जीवन में उपयोगिता वैज्ञानिक पद्दति से समझाई जायेगी, इससे वे अपनी समस्याओं का समाधान कर सकेंगे।

मुख्यवक्ता : डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल
दिनांक व समय : 28 नवम्बर, 2009 (शनिवार), प्रात: 9 बजे से
स्थान : विशा ओसवाल महाजन वाडी, 118/112, दादा साहेब फालके रोड, रणजीत स्टूडियो के सामने, भरतक्षेत्र साडी शॉप के पास, दादर (पू.), मुम्बई
रजिस्ट्रेशन फीस : 100/-रुपये (प्रोजेक्ट सामग्री एवं भोजन शामिल)
रजि. की अंतिम तिथि : 15 अक्टूबर, 2009
सेमिनार में प्रवेश आयु : 13 वर्ष व अधिक

इस संदर्भ में अधिक जानकारी के लिये निम्न नम्बरों पर संपर्क करें ह्न
डॉ. शुद्धात्मप्रभा टडैया (022) 28943250, 9821923722
श्रीमती विद्या उत्तम शाह - 9969262736

डॉ. भारिल्ल के आगामी कार्यक्रम

15 से 19 अक्टूबर	देवलाली	दीपावली
20 व 21 अक्टूबर	कोल्हापुर	प्रवचन एवं हीरक जयन्ती
22 व 23 अक्टूबर	बेलगाँव	प्रवचन एवं हीरक जयन्ती
24 अक्टूबर	गोवा	प्रवचन एवं हीरक जयन्ती
28 अक्टूबर	मंगलायतन	वि.विद्या. दीक्षान्त समारोह
13 से 17 नवम्बर	गजपंथा	पंचकल्याणक
18 व 19 नवम्बर	बीना	प्रवचन एवं हीरक जयन्ती
20 व 21 नवम्बर	विदिशा	प्रवचन एवं हीरक जयन्ती
22 से 24 नवम्बर	होशंगाबाद	तारण जयन्ती एवं हीरक जयन्ती
25 से 27 नवम्बर	देवलाली	वेदी प्रतिष्ठा
28 नवम्बर	मुम्बई	प्रवचन
29 नवम्बर	इन्दौर	प्रवचन एवं हीरक जयन्ती
22 से 28 दिसम्बर	दक्षिण भारत	फैडरेशन यात्रा
29 व 30 दिसम्बर	बैंगलोर	प्रवचन

प्रकाशन तिथि : 28 सितम्बर 2009

प्रति,

सम्पादक : **पण्डित रतनचन्द भारिल्ल** शास्त्री, न्यायतीर्थ, साहित्यरत्न, एम.ए., बी.एड.
प्रबन्ध सम्पादक : **पण्डित संजीवकुमार गोधा**, डबल एम.ए.(जैनविद्या व तुलनात्मक धर्मदर्शन; इतिहास), नेट, एम.फिल (जैन दर्शन)
प्रकाशक एवं मुद्रक : **ब्र. यशपाल जैन** द्वारा जैनपथप्रदर्शक समिति के लिए जयपुर प्रिण्टर्स प्रा.लि., जयपुर से मुद्रित तथा त्रिमूर्ति कम्प्यूटर्स, श्री टोडरमल स्मारक भवन, ए-४, बापूनगर, जयपुर से प्रकाशित।

यदि न पहुँचे तो निम्न पते पर भेजें -
ए- 4 बापूनगर, जयपुर - 302015 (राज.)
फोन : (0141) 2705581, 2707458
E-Mail : ptstjaipur@yahoo.com **फैक्स :** (0141) 2704127